तीन दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी की संक्षिप्त रिपोर्ट

समाज, संस्कृति एवं जीविका की निर्मिति : उत्तर भारत में नदियों और निषादों का सहजीवन

Society, Culture and the Making of Livelihood: The Symbiosis of Rivers and Nishads in Northern India

तिथि 22 जुलाई से 24 जुलाई 2019

आयोजक : भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला

संयोजक : डॉ. रमाशंकर सिंह, फेलो

दिनांक 22 से 24 जुलाई के बीच भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान , शिमला(संस्थान) में एक राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया । नीचे प्रत्येक दिन की सत्रानुसार एक संक्षिप्त रिपोर्ट प्रस्तुत की जा रही है जो इस संगोष्ठी में हुए विचार-विमर्श की दिशा और उसके अकादमिक झुकाव को प्रस्तुत करती है ।

संगोष्ठी के उद्घाटन सत्र की शुरुआत इसके प्रतिभागियों के स्वागत और संगोष्ठी के परिचय से हुई । इसके संयोजक रमाशंकर सिंह , फेलो, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान ने कहा कि इतिहास और साहित्य से अनुभव और प्रार्थ नाएँ गायब होती गयी हैं । नदियों पर न तो वैसा साहित्य लिखा जा रहा है जिसमें निषादों का जीवन हो और न ही लोग उस तरह से नदियों की प्रार्थना कर पा रहे हैं जैसा वाल्मीकि कर रहे थे। हालात इतनी खराब है कि यदि वाल्मीकि की झोपड़ी गंगा के किनारे होती तो बालू माफिया उनकी झोपड़ी उखाड़कर फेंक देते । यह भी बात उठी कि यह संगोष्ठी संसाधनों पर परिधीय समुदायों के हक की बात करे गी, उस पर चर्चा करे गी और कोशिश करेगी कि ऐसी कोई गुंजाइश निकले , जिससे उनके लिए एक अधिकतम न्यायपूर्ण दुनिया बनायी जा सके । प्रतिभागियों के साथ इस संगोष्ठी में संस्थान में उपस्थित और काम कर रहे सभी विद्वान भी शामिल रहे ।

उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता दिल्ली विश्वविद्यालय में राजनीति विज्ञान के प्रोफेसर रहे और वर्तमान में संस्थान के नेशनल फेलो एम. पी. सिंह ने की । प्रोफेसर बद्री नारायण ने 'निषाद समुदाय का स्मृतिलोक और नदी ' विषय पर उद्घाटन भाषण देते हुए पहले नदी और उसकी कल्पना पर और फिर निषादों के जीवन में नदी की महत्ता पर अपनी बात रखी। उन्होंने कहा कि मुख्यधारा की कल्पना के विपरीत पृथ्वी पर कमला नदी को दुलरादयाल जैसे वीर लाते हैं । उन्होंने कहा कि भारतीय समाज और इतिहास को लिखने एवं समझने के लिए वैकल्पिक स्रोतों पर उचित ध्यान नहीं दिया गया है। समुदायों की स्मृतियों के सहारे उनके उनके जीवन पर कोई विमर्श आगे बढ़ाने का प्रयास नहीं किया है। भारतीय समाज में जल की उपस्थिति पर केवल विकास-मूलक नजरिये से बात की गयी है या उसकी आलोचना की गयी है कि नदियों पर बांध नहीं बनाना चाहिए और उन्हें अविरल बहने देना चाहिए। इस पूरे विमर्श में स्वयं नदी को एक जीवंत रचना के रूप में नहीं देखा गया है।

उन्होंने ध्यान दिलाया कि नदियों को समझने के लिए उसके आस- पास बसने वाली लोक -संस्कृति को समझना जरूरी है क्योंकि नदी लोक से बनती है और लोक उस नदी से सृजित होता है। एक सामाजिक

दस्तावेज़ के रूप में लोकगाथाएं नदियों को दर्ज़ करती चलती हैं । हर नदी का अपना दुलरा दयाल, विश्वामित्र, भगीरथ होते है जिनका नदी से अपना- अलग रिश्ता होता है। यह नायक न केवल गंगा की जमीन पर बल्कि नेपाल की कमला, बिहार की कोशी तथा अन्य छोटी जगहों की नदियों के किनारे पर भी मिलेंगे। इन नदियों से पुरुष और महिलाओं का अलग- अलग सम्बन्ध होता है, जहाँ पुरुष उसे आजीविका के नजरिये से देखते हैं, वहीं महिलाएं नदी से अपना दुःख साझा करती हैं जिसकी गुंजाइश उन्हें अपने सामाजिक संबंधों और जीवन में नही मिल पाती है। उन्होंने आगे कहा कि नदियों का मनुष्यों की स्मृतियों में भी प्रमुख स्थान होता है। जहाँ वे भौतिक रूप में पाई जाती हैं, वहां वे अनुष्ठान के रूप में उपस्थित होती हैं जैसे, विवाह के दिन थाली में वर- वधू का पैर धोना भी गंगा आगमन अर्थात सुखी और सम्पूर्ण जीवन के आगमन के परिकल्पना को कल्पित कर ता है। औपनिवेशिक काल में सूरीनाम, गुयाना आदि जगह प्रवासित हुए लोग गंगा को अपनी स्मृतियों में बसाये हुए हैं। उन्होंने घरों और गलियों में गंगा की प्रतिमा बनाई है जिसमे गंगा रोहू मछली पर खड़ी है, उनके हाथ में अनाज और एक व्यक्ति चँवर (पंखा) झुला रहा होता है। नदी और उसके जीवन को समझने के लिए लोक के वर्तमान और उसकी स्मृति- दोनों को समझना आवश्यक है।

इसके बाद दूसरा औपचारिक सत्र रिवर, पीपुल एंड द स्टेट शुरू हुआ। इसकी अध्यक्षता संस्थान की नेशनल फेलो प्रोफेसर सुजाता पटेल ने की। सीएसडीएस के प्रोफेसर अवधेन्द्र शरण ने इस संगोष्ठी का पहला केंद्रीय व्याख्यान 'पवित्र नदी, प्रदूषित नदी : कुछ विचार गंगा नदी के संदर्भ में ' विषय पर दिया। उन्होंने ब्रिटिश अधिकारियों, म्यूनिसिपल बोर्ड की रिपोर्टों और सफाई विभाग से जुड़े आयुक्तों की रिपोर्टों को आधार बनाकर औपनिवेशिक अधिकारियों की भारतीय नदियों के प्रदूषण संबंधी चिंताओं , आशंकाओं और उनके मतभेदों को सामने रखा। साथ ही , प्रदूषण से जुड़े इस विमर्श की सीमाओं को भी रेखांकित किया। ये सीमाएँ तत्कालीन इंग्लैंड में नदियों की सफ़ाई से जुड़े प्रावधानों को दृष्टिगत रखने पर और स्पष्ट हो जाती हैं। अवधेन्द्र शरण ने उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध से लेकर बीसवीं सदी के दूसरे दशक तक ब्रिटिश भारत में गंगा सरीखी भारतीय नदियों की पवित्रता की धारणा , उनकी सफ़ाई के प्रयासों , नदी पर निर्भर समुदायों पर इसके दूरगामी प्रभाव और इसके राजनीतिक-सामाजिक निहितार्थों का भी आकलन किया। इसी क्रम में उन्होंने राष्ट्रवादी नेताओं मसलन, डॉ. भगवान दास, महात्मा गांधी और मदन मोहन मालवीय आदि द्वारा गंगा नदी के प्रदूषण के संबंध में व्यक्त की गई चिंताओं और उसके ऐतिहासिक महत्त्व को भी बताया। डॉ. शुभनीत कौशिक ने अपने परचे 'नदी, राष्ट्र और इतिहास : भारतीय नदियाँ और आधुनिक भारत का निर्माण' में आधुनिक भारत में नदियों के प्रति बदलते दृष्टिकोणों को रेखांकित किया। अनुपम मिश्र के हवाले से उन्होंने दिखाया कि समाज के 'तरल दर्पण' के रूप में नदियों को देखने वाली समझ पर धीरे-धीरे किस तरह औपनिवेशिक भारत में नदियों की उपयोगितावादी सोच हावी होती चली गई। नदी का सामाजिक-सांस्कृतिक महत्त्व अब भी बचा था, अनेक अवसरों पर राष्ट्रीय नेतृत्व ने भारतीयों द्वारा नदियों के धार्मिक-सांस्कृतिक इस्तेमाल में बाधा डालने पर औपनिवेशिक राज्य को चुनौती भी दी। लेकिन आज़ादी के बाद राष्ट्रीय नेतृत्व का ध्यान नदियों के बहुद्देशीय प्रयोग और नदी घाटी परियोजनाओं पर केन्द्रित हो चला था। शुभनीत के अनुसार औपनिवेशिक काल में अकाल, सूखे और बाढ़ के प्रत्यक्षदर्शी रहे जवाहरलाल नेहरू और डॉ. अंबेडकर सरीखे नेताओं ने नदी घाटी परियोजनाओं को इन समस्याओं के समाधान के रूप में देखा। एक

हद तक ये परियोजनाएं अपने उद्देश्य में और राष्ट्रीय नेतृत्व की अपेक्षाओं को पूरा करने सफल भी रहीं। लेकिन जैसा कि आज़ादी के बाद के दशकों में देखने को मिला, इन परियोजनाओं की अपनी सीमाएँ थीं। इस संदर्भ में, शुभनीत ने 1921 के मूलशी पेटा सत्याग्रह की भी चर्चा की , जहाँ मावला समुदाय के किसानों ने टाटा की बांध बनाने की परियोजना का विरोध किया था , और इसके ऐतिहासिक महत्त्व को समझने पर ज़ोर दिया।

तीसरा सत्र मुख्यत: इतिहासकारों और पुरातत्त्वविदों के हवाले रहा। रिवर्स एंड पीपुल इन द हिस्ट्री नामक इस सत्र की अध्यक्षता संस्थान की टैगोर फेलो प्रोफेसर विजया रामास्वामी ने की । कलकत्ता विश्वविद्यालय की प्रोफेसर सुचन्द्र घोष ने अपने व्याख्यान 'सिचुएटिंग नौ-व्यवहार जीविन एंड कैवार्त्तास इन द रूरल सेटलमेंट ऑफ़ अर्ली मेडिवल आसाम' में कहा कि मध्यकालीन आसाम के आर्थिक और सांस्कृतिक परिदृश्य में न केवल नदी बल्कि तालाब, झील, कुल्याओं ने प्रभावित किया; उसका रूप संवारा । और यह सभी जल-संरचनायें नौ-व्यवहारजीवियों और मछुआरों (कैवर्त्त) की जीविका का स्रोत थीं । भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण के निदेशक रह चुके डॉ. राकेश तिवारी ने 'गंगा घाटी में मानव-सभ्यताएं' शीर्षक व्याख्यान में कहा कि गंगा घाटी जैसी भी थी, उसमें मानवीय गतिविधियां पूर्व प्रस्तर युग से ही चलती आ रही थीं। धान की खेती की शुरुआत यहाँ लगभग 9000 वर्ष पूर्व हो चुकी थी। पूरी की पूरी गंगा घाटी इतने घने वनों से आक्षादित और दलदली नहीं थी कि यहाँ बड़े पैमाने पर मानव बस्तियां न बस सकें , प्रारम्भिक बसावटों को बसाने के लिये यहां के वनों को जला कर खुली भूमि पाने के कोई साक्ष्य नहीं मिले हैं। आज से कम से कम 5000 से 4000 बरस पूर्व यहाँ सैकड़ों बस्तियां बस चुकी थीं। इतना ही नहीं 2500 बरस के आसपास ही गंगा घाटी से गुजरने वाला उत्तरापथ धुर दक्षिणापथ, सुदूर पूर्व, पश्चिमोत्तर के आगे और उत्तर में हिमालय के पार तक ले जाता रहा। कामता प्रसाद सुंदर लाल साकेत महाविद्यालय में प्राचीन इतिहास के विभागाध्यक्ष डॉ. महेंद्र पाठक ने 'सरयू नदी की धार्मिक एवं सांस्कृतिक पारिस्थितिकी' पर व्याख्यान देते हुए कहा कि मोक्षदायक सप्तपुरियों में परिगणित अयोध्या वाल्मीकि रामायण के अनुसार, किसी समय तीन दिशाओं में सरयू नदी से घिरी हुई थी। इस नदी ने अयोध्या को आर्थिक और सांस्कृतिक पोषण प्रदान किया। सरयू नदी के तट पर उत्तर भारत की निषाद संस्कृति पल्लवित-पुष्पित होती रही है। आज भी इसके तटवर्ती क्षेत्रों में रहने वाले निषादों की जीविका इस नदी पर आश्रित है। अपने व्याख्यान में उन्होंने संस्कृत ग्रन्थों और रामचरित मानस के गहन पाठ के द्वारा सरयू नदी की प्राचीन महत्ता को बताने के साथ-साथ उसके धार्मिक और सांस्कृतिक अभिप्रायों को स्पष्ट करने का प्रयास किया और सरयू नदी की सांस्कृतिक पारिस्थितिकी को भी स्रोताओं के समक्ष रखा।

चौथा सत्र द लिटरेरी इमेजिनेशंस, रिवर्स एंड कम्युनिटीज शीर्षक से था। इसकी अध्यक्षता संस्थान के अध्येता डॉ. आश्विन पारिजात ने की । हिन्दी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी के प्रोफेसर आशीष त्रिपाठी ने 'गंगा और उसका तटवर्ती समाज : हिन्दी साहित्य में निषाद , बनारस का संदर्भ' में रेखांकित किया कि गंगा एक नदी से ज्यादा एक संस्कृति है। उसका इतना लंबा फैलाव उत्तर भारत में उसके महत्व को तो दर्शाता ही है उसके दैवीय रूप को भी प्रतिष्ठित करता है। बनारस के संदर्भ में गंगा और उसके तटवर्ती समाज का खासकर निषाद समुदाय का उल्लेख हिन्दी के जिन रचनाकारों के यहाँ दिखाई देता है उनमें तुलसीदास, प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद , रुद्र काशिकेय , शिवप्रसाद सिंह , त्रिलोचन , केदारनाथ सिंह ,

काशीनाथ सिंह से लेकर ज्ञानेन्द्रपति तक का नाम शामिल है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के शोधछात्र श्री धीरेंद्र प्रताप सिंह ने 'लोक संस्कृति में जलस्रोतो की भूमिका: स्थिति और भविष्य ' विषयक अपने परचे में कहा कि जलस्रोत लोक संस्कृति के वाहक हैं। लोक-जीवन की सामूहिकता इन्हीं जलस्रोतों के किनारे सुदृढ़ होती रही हैं। यदि जलस्रोतों को बचाने के लिए सामूहिक प्रयास नहीं किए तो यह लोक संस्कृति को संकुचित और विघटित करने वाला साबित होगा। साथ ही लोक संस्कृति में अंतर्निहित लोक-जीवन और जीविका का सवाल भी एक बड़ी चुनौती होगी। काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी के शोध-छात्र श्री जगन्नाथ दुबे ने 'पूर्व औपनिवेशिक भारत में नदी , निषाद और परिधीय समुदायों की चेतना-संदर्भ: भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य' नामक अपने परचे में कहा कि आज हम जिस नदी , जल स्रोतों, प्राकृतिक संसाधनों और उस पर आश्रित समूहों के जीवन को लेकर चिंतित हो रहे हैं, वह चिंता आज अचानक से पैदा हो गयी है, ऐसा नही है। इस चिंता के मूल में एक बड़ा कारण गांधी के विकास मॉडल के समानान्तर औपनिवेशिक आर्थिक विकास मॉडल को चुनना भी है। गांधी जिस रास्ते देश को ले जाना चाहते थे, यह देश उस रास्ते आगे न बढ़कर एक ऐसे रास्ते से आगे बढ़ा है जिसमें मानवीय मूल्यों और पर्यावरण के लिए बहुत कम जगह बची है। उपनिवेश पूर्व भारत के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन में नदी जलस्रोत और प्रकृति की समान हिस्सेदारी थी। वह एक ऐसा समाज था जिसमें प्रकृति के साथ मनुष्य का रिश्ता सहजीवी किस्म का था। उसका यह रूप उस दौर के लोकगीतों और भक्त कवियों की कविताओं में देखा जा सकता है।

संगोष्ठी के दूसरे दिन और पाँचवे सत्र का नाम रिवर्स एंड द संस्कृत टेक्स्ट था जिसकी अध्यक्षता संस्थान के नेशनल फेलो प्रोफेसर रमेशचंद्र प्रधान ने की । दिल्ली विश्वविद्यालय में संस्कृत पढ़ा रहे डाक्टर बलराम शुक्ल ने ' शास्त्रों में गंगापरक वर्णनों के पारिस्थितिकीय निहितार्थ ' विषय पर अपना व्याख्यान दिया। उन्होंने ध्यान दिलाया कि शास्त्रों में पौराणिक शैली में उपाख्यानों तथा माहात्म्यों के बीच ऐसे महत्त्वपूर्ण संकेत बार बार आ जाते हैं जिनका सम्बन्ध गंगा के पारिस्थितिकीय तन्त्र की सुरक्षा से है । नदी का सबसे महत्त्वपूर्ण जीवनाधायक तत्त्व उसका वेग होता है। आजकल विभिन्न बाँधों, अवैध निर्माणों तथा प्रदूषणों द्वारा उसकी वहन क्षमता का विनाश करके उसकी गति नष्ट कर दी गई है। उन्होंने बाँधों को बना कर जल जमाव करना नदियों की प्रकृति के विपरीत कार्य है । धर्मशास्त्रों ने बार बार चेताया है कि किसी अन्य तीर्थ अथवा देवता के प्रति किये गये अपराध का पाप गंगा में धुल सकता है लेकिन गंगा के प्रति किया गया कोई भी अपराध क्षम्य नहीं है। गढ़वाल विश्वविद्यालय की शोध छात्रा श्रुति मीमांसा ने 'उत्तरभारत के परिप्रेक्ष्य में महाभारत में वर्णित नदियाँ तथा निषाद जाति ' विषय पर अपना परचा पढ़ा। उन्होंने रेखांकित किया कि महाभारत में अनेक नदियों तथा निषाद जाति के उल्लेख प्राप्त होते हैं। यहाँ गङ्गा, यमुना, सरस्वती, अलकनन्दा, मन्दाकिनी, सिन्धु, चेनाव, अरूणा, ऋषिकुल्या, कौशिकी, चर्मण्वती, बहुदा, वितस्ता (झेलम), सरयू आदि अनेक नदियों का उल्लेख प्राप्त होता है। भीष्मपर्व में नदियों को उनकी पोषक शक्ति के कारण विश्वमातर कहा गया है। महर्षि वेदव्यास द्वारा उनका मानवीयकरण करके उनके संरक्षण का मार्ग भी प्रशस्त किया गया है। महाभारत में नदियों के किनारे जन्मी तथा विकसित हुई निषाद जाति का वर्णन प्राप्त होता है। महाभारत के मुख्य तीन पात्र रानी सत्यवती, महारथी कर्ण तथा गुरूभक्त एकलव्य का निषाद जाति से सम्बन्ध था। राजा शान्तनु की द्वितीय भार्या सत्यवती एक निषाद कन्या थी। उसके पिता एक मछुआरे थे। महारथी कर्ण का पालन एक निषाद परिवार में हुआ था तथा एकलव्य निषादराज के पुत्र थे, जो वनों में रहकर जीवन यापन करते थे। दिल्ली विश्वविद्यालय की शोध छात्र सुश्री रागिनी कपूर ने 'द सीमियोटिक्स ऑफ़ इकोलोजी इन द क्लासिकल इंडियन टेक्स्ट' नामक अपने परचे में नदी, निषाद और उनके सांस्कृतिक परिदृश्य पर अपनी बातें रखीं । इन काव्यों की बनवत में उन्होंने प्रकृति की प्रधानता को

रेखांकित करते हुए रामायण के बालकाण्ड और महाभारत के आदिपर्व की ओर श्रोताओं का ध्यान आकृष्ट किया।

छठवें सत्र रिवर, कम्युनिटी एंड सिनेमा की अध्यक्षता संस्थान के फेलो प्रोफेसर मुन्डोली नारायणन ने की। अपने व्याख्यान 'एन एपिक नैरेटिव' में डॉ. देबजानी हलदर ने ऋत्विक घटक की फिल्म 'तितास एकती नदीर नाम' के संदर्भ में नदियों और मछुआरों के जीवन की नाभिनाल-बद्धता पर प्रकाश डाला । इस फिल्म ने नदी अपने आप में एक चरित्र है । उन्होंने कहा कि भारत की दृश्य कलाओं ने नदी के पालनहारी रूप के साथ ही महिलाओं के जीवन को रूप दिया है । इलाहाबाद विश्वविद्यालय के शोधछात्र श्री अंकित पाठक ने ' हिंदी सिनेमा में नदियों से जुड़े समुदाय : प्रस्तुति और एब्सेंसिया का सवाल ' विषय पर अपना परचा प्रस्तुत किया। उन्होंने रेखांकित किया कि भारतीय राज्य के बदलते स्वरूप के चलते नदियों से जुड़े समुदायों की सिनेमाई प्रस्तुति किस प्रकार बदली ? और उनकी सांस्कृतिक और आर्थिक स्थिति विकास की नवउदारवादी अवधारणा से कैसे परिवर्तित हुई है। उन्होंने नदियों से जुड़े संसाधनों की मिल्कियत के सवाल को हिंदी सिनेमा के द्वारा प्रस्तुत किया।

सातवें सत्र 'वाटर एंड द विमेन' की अध्यक्षता संस्थान के फेलो डॉ. सतेन्द्र कुमार ने की । गोविंद बल्लभ पंत सामाजिक विज्ञान संस्थान की डॉ. अर्चना सिंह ने इंटरफेस ऑफ़ रिवर विद फेमिनिटी एंड फेस्टीविटी : द एवरीडे लाइफ ऑफ़ विमेन इन कुम्भ' शीर्षक अपने व्याख्यान में गंगा और यमुना के किनारे किनारे सम्पन्न होने वाले कुम्भ मेले की धार्मिक और सांस्कृतिक निर्मिति के भीतर स्त्रियों की आवाजों को साझा किया। उन्होंने कहा कि मेला स्त्रियों को सार्वजनिक जीवन में स्थान , अपनी पहचान बनाने और अपना स्त्रीत्व को प्रस्तुत करने का मौका देता है , वे मेले में सार्वजनिक और निजी जीवन की दीवारों को तोड़कर अपने लिए एक ऐसे दायरे का निर्माण करती हैं जिसे उपेक्षित नहीं किया जा सकता है । पहले आश्रमों में स्त्रियाँ नहीं थीं लेकिन आज अधिकांश अखाड़ो में स्त्रियाँ पदाधिकारी है। कुम्भ मेले में बड़ी संख्या में स्त्रियाँ कल्पवासिनी और तीर्थयात्री के रूप में प्रतिभाग करके एक महिला समुदाय का गठन करती हैं। मेला उन्हें एक नई स्त्री पहचान देता है। नेहा राय एवं सीमा यादव ने अपना संयुक्त परचा 'निषाद समुदाय की सामाजिक भौगोलिकी का अध्ययन: आजीविका और संस्कृति के सन्दर्भ में' पढ़ते हुए रेखांकित किया कि प्राचीन काल में जो नदीय समुदाय सामाजिक अपवंचना के बावजूद सुरक्षित रह पाते थे परन्तु आज यही नदी इनके बहिष्करण का कारण बनती जा रही है । उन्होंने अपने परचे में गंगा नदी के किनारे रहने वाली निषाद समुदाय की स्त्रियों की दिनचर्या के विश्लेषण के द्वारा उनके सांस्कृतिक बोध का रेखांकन किया।

आठवें सत्र नेशन एंड द रिवर्स की अध्यक्षता संस्थान की फेलो डॉ. शर्मिला चंद्रा ने की । रुचिश्री ने अपने परचे 'एनालिसिस ऑफ़ नेशनल वाटर पालिसी इन इंडिया' में पूर्वी उत्तर प्रदेश में बहने वाली रासी और रोहिणी नदियों के किनारे बसे निषादों के जीवन और संघर्ष की चर्चा की । उन्होंने यह बताया कि नदी इस समुदाय की चेतना में किस प्रकार एक साझी संपत्ति के रूप में विराजमान है और उसे बचाए रखने के लिए वे निरंतर प्रयास कर रहे हैं । शोधछात्रा सुश्री गुंजन राजवंशी ने ' नदी, मेले और प्रदूषण: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन' में मेलों के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक महत्व और बदलते स्वरुप की पड़ताल की, और उस ट्राजेक्ट्री को भी प्रलेखित करने का प्रयास किया जिसके कारण कुम्भ मेले में उपेक्षित, वंचित, गरीब समुदाय जैसे – निषाद, सफाई कर्मचारी, स्ट्रीट वेंडर्स, आर्थिक रूप से कमजोर रविदास, कबीरपंथ के विभिन्न अखाड़े भाग लेते हैं। बिहार से आये पत्रकार श्री पुष्यमित्र ने ' उत्तर बिहार की नदियां और मल्लाहों का जीवन' नामक अपने प्रस्तुतीकरण में रेखांकित किया कि अभी हाल-हाल तक इस पूरे इलाके में मल्लाहों

और निषाद जातियों का ठीक-ठाक प्रभुत्व था। वे शासक नहीं थे, मगर उनकी आर्थिक स्थिति ठीक थी। वे मछलियां पकड़ते थे, नौकायन करते थे और नदी को पार कराने के इकलौते कारक थे लेकिन आजादी के बाद जब नदियों को लेकर सरकार की नीतियों में बड़ा बदलाव आया और बिहार में जल संसाधन विभाग नदियों को तटबंधों से बांधने में जुट गया तो नदियों की सेहत भी बिगड़ी और इनके सहारे आजीविका चलाने वाली निषाद जाति की भी। कभी जल संसाधनों से परिपूर्ण माना जाने वाला उत्तर बिहार के निषाद नदियों और जल से जुड़े पेशे को छोड़ कर खेतिहर मजदूर और निर्माण मजदूर बनने की राह पर निकल पड़े हैं।

नवें सत्र व्यायसेज फ्रॉम द मार्जिन्स की अध्यक्षता संस्थान के फेलो प्रोफेसर हितेंद्र पटेल ने की । इस सत्र में निषाद समुदाय के नेता, 1979 में स्थापित 'राष्ट्रीय निषाद संघ ' के राष्ट्रीय सचिव और आंगिक बुद्धिजीवी श्री लौटनराम निषाद ने कहा कि निषाद समुदायों से ही भारतीय संस्कृति शुरू होती है। चाहे वेदव्यास हों, एकलव्य हों या फूलन देवी, उन्होंने लाखों-लाख कमजोर लोगों के स्वप्नों और हिम्मत को आगे बढ़ाया है। नदी में नौका-चालन, मछली के शिकार, खेती और बालू के निकालने पर लगातार रोक लगायी जा रही है और उससे निषाद समुदाय लगातार लड़ता रहा है। ध्यातव्य है कि श्री लौटनराम जी 1998 से ' निषाद ज्योति' नामक पत्रिका का संपादन कर रहे हैं। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र से एम.ए. कर रहे श्री हरिश्चन्द्र बिंद ने 'आधुनिक समय में निषाद समाज की आर्थिक दशा: वाराणसी जिले में गंगा के किनारे के निषाद ' विषय पर अपना परचा पढ़ा। उन्होंने कहा कि निषाद समाज के लोग प्राचीन काल से ही जल, जंगल और जमीन पर आश्रित थे। अथर्ववेद में चार वर्णों -ब्राह्मण , क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के अतिरिक्त पांचवें वर्ण निषाद का उल्लेख है। जब सड़कें नही हुआ करती थीं और व्यापार के लिए जलमार्ग ही प्रमुख साधन था, उस समय निषाद समाज के लोगों की व्यापार में अहम भूमिका हुआ करती थी। और आज भी निषादों की आजीविका का एकमात्र सहारा नौकायन , खेती करना और मछली मारना तथा गंगा एवं सहायक नदियों से संबंधित सभी कार्य हैं। निषाद समाज के लिए एक कहावत प्रचलित है की जहां " नदी है वहां निषाद है और जहां निषाद है वहां नदी "। निषाद और नदी एक दूसरे के पूरक हैं। गोविंद बल्लभ पन्त सामाजिक विज्ञान संस्थान के एमफिल के छात्र श्री गोविंद निषाद ने 'नदी, निषाद और उनका जीवन : सरयू नदी और उसके किनारे बसे एक गाँव का संदर्भ ' पर बात रखते हुए पहले अपने जीवन के बारे में बताया कि उनके पिता ने गरीबी में रिक्शा चलाया , फिर भट्ठे पर मजदूरी की , चाय की एक दूकान खोली जहाँ गोविंद ने अखबार पढ़ने शुरू किए यह अखबार उनके जीवन की सबसे सुंदर चीज थी । इसमें उन्होंने रेखांकित किया किस प्रकार निषाद समुदाय अपने सामुदायिक परंपरागत कार्यों के अतिरिक्त अन्य कार्यों से जुड़ रहा है और नदी के किनारे जीविका सीमित होने से लोग दूसरे कार्यों को अपना रहे हैं ।पहले भी निषाद नौका चालन और मछली मारने के अतिरिक्त अन्य कार्यों को करता रहा है आज भी कर रहा है । वर्तमान में निषाद समुदाय बदल रहा है ।उसकी महत्वाकांक्षा बढ़ रही है। इनको पहचानने की जरुरत है।

संगोष्ठी के तीसरे दिन में हुए दसवें सत्र फॉर फ्रॉम द टेक्स्ट की अध्यक्षता संस्थान के फेलो डॉ. अभिषेक कुमार यादव ने की । डॉ. खुशबू सिंह ने 'नदियों का लोक एवं लोक की नदियाँ : अवधी और भोजपुरी लोकगीतों में गंगा, यमुना और सरयू नदी' विषय पर बोलते हुए कहा कि नदियों से नाविकों और

मछुआरों के सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक संबंध बहुत ही गहन तरीके से जुड़े हैं और उन्हें अवधी और भोजपुरी भाषी क्षेत्र में प्रचलित लोकगीतों में स्पष्ट तौर पर लक्षित किया जा सकता है। लिखित ग्रंथों से बाहर नदियों के अनगिनत संदर्भ लोक जीवन में समाहित हैं। इन जीवन सन्दर्भों में नदीं माँ, बहन, बुआ तो है ही, वह मनोरथों को पूर्ण करने वाली, शोक-संताप हरने वाली है। वह संतान देने वाली, स्वर्ग ले जाने वाली, क्षुधा मिटाने वाली है। सबसे बढ़कर नदी लोगों के, विशेषकर महिलाओं और कमजोर समूहों के जीवन में शामिल रहती है। लोग अपने जीवन में 'नदी को गाते हैं'। डॉ. ज्योति सिन्हा ने गंगा नदी के किनारे लगने वाले मेलों और उत्सवों की व्याख्या करते हुए उनके सांगीतिक महत्त्व पर अपना परचा 'काशी का एक अनूठा जलोत्सव : बुढ़वा मंगल का मेला' पढ़ा । उन्होंने काशी नगर के नगर के सांस्कृतिक वैभव के निर्माण में संगीत- नृत्य शैलियाँ पर अपनी बात रखी। श्रीमती कमलेश कुमारी ने संगीत और नदी संस्कृति पर केंद्रित अपना परचा ' उत्तर भारतीय समाज में नदियों की सांस्कृतिक और धार्मिक भूमिका' पढ़ा। इसमें उन्होंने संगीत, कर्मकांडों और नदी की भूमिका का विश्लेषण किया।

ग्यारहवें सत्र रिसोर्स एंड पोलिटिक्स की अध्यक्षता संस्थान के फेलो प्रोफेसर एस. के. चहल ने की। संस्थान में फेलो के रूप में काम कर रहे डॉ. अजय कुमार ने ' न्यायपूर्ण समाज के निर्माण की रणनीति : प्राकृतिक संसाधन और वैकल्पिक समाजशास्त्र में जलकेन्द्रित समुदाय' विषय पर अपनी बात रखते हुए कहा कि आरक्षण एवं प्रतिधित्व के पक्ष पर बात होती है लेकिन इस पर कभी बात नही होती है कि संसाधनों तक पहुँच कैसे सुनिश्चित हो क्योंकि संसाधनों तक पहुँच को सुनिश्चित किए बिना न्याय संभव नही होगा। झाड़ू , ताड़, पलाश, पत्तल-दोना, सिरकी, सरपत, औषधीय समुदाय, नाव बनाने वाले, नाव चलाने वाले, मछली पालने वाले, सुअर पालने वाले, भेड़-बकरी पालने वाले, खच्चर पालने वाले समुदायों के संदर्भ में बात करते हुए उन्होंने रेखांकित किया भारत में हर प्राकृतिक वस्तु से कोई न कोई हाशियाकृत और परिधीय समूह का जीवन जुड़ा हुआ है। राज्य को इन समुदायों के लिए न्याय सुनिश्चित करने के लिए रणनीतियाँ बनानी चहिए। श्री जितेंद्र सिंह, शोध छात्र, गोविंद बल्लभ पंत सामाजिक विज्ञान संस्थान, प्रयागराज ने ' निषाद समुदाय और प्रा कृतिक संसाधनों पर हकदारी : प्रतिरोधी चेतना के स्वर ' नामक अपने परचे में कहा कि औपनेवेशिक समय से अब तक इस समुदाय को सत्ता और हकदारी से दूर रखा गया है । आज यह समुदाय अपने हक़ की लडाई लड़ने में सक्षम हो चुका है। सामुदायिक इतिहास, मिथक, किवदंतियों आदि के द्वारा वे पुश्तैनी संसाधनों पर हकदारी पेश करने की कोशिश कर रहे हैं।

समापन सत्र की अध्यक्षता संस्थान के नेशनल फेलो प्रोफेसर दाताराम पुरोहित ने की । इस संगोष्ठी का समापन संस्थान के फेलो रह चुके भाषण प्रोफेसर शेखर पाठक ने 'हिमालयन रिवर्स एंड देयर इकोलोजिकल रिलेशनशिप विद नार्थ इंडिया' शीर्षक से दिया । उन्होंने बताया कि ग्लोबल वार्मिंग, पर्वतों और पहाड़ों के क्षरण, अंधाधुंध निर्वनीकरण ने हिमालय से निकलने वाली नदियों का जीवन संकट में दाल दिया है। ग्लेशियर लगातार सिकुड़ रहे हैं जिससे उत्तर भारत की भौगोलिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक पारिस्थितिकी प्रभावित हो रही है । उन्होंने कहा कि नदियों, पर्वतों और वनों के बचे रहने से ही हम सब बचे रहेंगे, इसलिए उनका सम्मान, संरक्षण और संवर्धन आवश्यक है।